पी. के. चौधरी

बनाम

कमांडर, 48 बीआरटीएफ (जीआरईएफ)

(आपराधिक अपील संख्या: 480/2008)

मार्च 13, 2008

[एस. बी. सिन्हा और वी. एस. सिरपुरकर, जे. जे.]

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973:

धारा 190 - शिकायत याचिका दायर करने में देरी - माफ नहीं की गई - सीमा की अवधि समाप्त होने के बाद अपराध का संज्ञान-अभिनिर्धारित - विधि की दृष्टि में बुरा - दंड संहिता, 1860 - धारा 166, 167 .

धारा 197 - के तहत मंजूरी की - आवश्यकता - सशस्त्र बल के सदस्य द्वारा धारा 166 और 167 भारतीय दण्ड संहिता के तहत अपराध कारित किया जाना- सक्षम प्राधिकारी की मंजूरी प्राप्त किए बिना संज्ञान - अभिनिर्धारित- विधि की दृष्टि में बुरा- दण्ड संहिता, 1860 -धारा 166 व धारा 167.

अभियोजन पक्ष का मामला यह था कि प्रासंगिक अवधि के दौरान, अपीलार्थी सशस्त्र बलों का सदस्य था। उसने दिनाँक 05.01.1989 से 11.02.1992 की अवधि के दौरान धारा 166 व धारा 167 भा.दं.सं. के तहत अपराध कारित किया। दिनांक 20.12.1996 की रिपोर्ट के आधार पर नवंबर, 2000 में एक परिवाद पेश हुआ। मजिस्ट्रेट ने अपीलार्थी के खिलाफ अपराधों का संज्ञान लिया।

अपीलार्थी ने दं.प्र.सं. की धारा 482 के तहत कार्यवाहीयों को रद्द करने के लिए आवेदनपत्र पेश किया, जिसे उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था।

इस न्यायालय में अपील में, अपीलार्थी ने तर्क दिया कि संज्ञान लेने का आदेश कानून की दृष्टि से गलत था क्योंकि वह मियाद की निर्धारित अवधि के बाद दायर किया गया था एवं धारा 197 दं.प्र.सं. में अनुज्ञात, सक्षम प्राधिकारी की वेद्य स्वीकृति के साथ नहीं था।

उत्तरदाताओं ने तर्क दिया कि धारा 197 दं.प्र.सं. के तहत स्वीकृति लेने की आवश्यकता नही थी क्योंकि अपीलार्थी धारा 125 व धारा 126 सेना अधिनियम 1950 के प्रावधानों से शासित था।

न्यायालय द्वारा अपील स्वीकार करते हुएः-

अभिनिर्धारितः 1.1 जबकि धारा 166 भा.दं.सं. साधारण कारावास का प्रावधान करती है, जिसकी अवधि एक वर्ष तक हो सकेगी; धारा 167 भा.दं.सं. में जो सजा दी जा सकती है, उसमें दोनों में से किसी भांति का कारावास जो कि तीन वर्ष तक हो सकेगा या जुर्माना या दोनों (पैरा संख्या 6)(980-डी)

1.2. धारा 468 दं.प्र.सं. उस अवधि की सीमा निर्दिष्ट करता है जिसके भीतर किसी भी अपराध का संज्ञान लिया जा सकता है-दं.प्र.सं. की धारा 468 की उपधारा (2) का खण्ड (सी) तीन वर्ष की मियाद अवधि निर्दिष्ट करता है, यदि अपराध एक वर्ष से अधिक लेकिन तीन वर्ष से अनधिक की अवधि के लिए कारावास के लिए दण्डनीय है- इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं है कि न्यायालय के पास देरी को माफ करने की शक्ति है, हांलाँकि इस मामले में न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा देरी को माफ करने का कोई आदेश नहीं दिया गया है (पैरा 7,8) (980-ई-एफ)

1.3 न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उक्त कथनों पर अपना दिमाग नहीं लगाया। इसने अपीलार्थी को कोई नोटिस जारी नहीं किया कि वह कारण बताए कि विलम्ब को क्यों माफ नहीं किया जाना चाहिए। देरी को माफ करने से पहले, अपीलार्थी को नहीं सुना गया- देरी को माफ करने से पहले अपीलार्थी सुनवाई का अवसर प्राप्त करने का हकदार था [पैरा 9-10] [981-बी-एच]

महाराष्ट्र राज्य बनाम शरदचंद्र विनायक डोंगरे व अन्य (1995) 1 एस. सी. सी. 42-संदर्भित

2. स्वीकृत रूप से अपीलार्थी एक लोक सेवक है। ऐसा कहा गया है कि उसने लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरुपयोग किया है। धारा 197 दं.प्र.सं. सक्षम प्राधिकारी से स्वीकृति प्राप्त करने का प्रावधान करती है, यदि अपराध कारित होने में लोक सेवक अपने पदीयें कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य कर रहा था, या ऐसा तात्पर्यित था। जैसे कि लोक सेवक के आपराधिक दुराचार कारित किए जाने का धारा 166 व धारा 167 भा.दं.सं. के अपराध से सीधा सम्बंध है। अविवादित रूप से न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा अपीलार्थी को समन जारी करने से पहले स्वीकृति का आदेश एक पूर्ववर्ती शर्त थी (पैरा 11)(982-ए-सी)

3.1. जो भी हो धारा 125 व धारा 126 सेना अधिनियम 1950 के प्रावधान लागू नहीं होते हैं (पैरा-12)(982-डी)

3.2. सेना अधिनियम की धारा 125 किसी अपराधी द्वारा अभियुक्त पर मुकदमा चलाने के लिए सक्षम प्राधिकारी के विकल्प को प्रदान करती है कि उसका विचारण या तो आपराधिक न्यायालय द्वारा किया जावे या कोर्ट मार्शल की कार्यवाही द्वारा किया

जावे। - धारा-126 में आपराधिक न्यायालय द्वारा अपराधी को सुपुर्द करने की अपेक्षा करने की शक्ति के बारे में प्रावधान है। [पैरा 13] [982-ई]

3.3. प्रत्यर्थी के विकल्प के रूप में अपीलार्थी पर साधारण आपराधिक न्यायालय में मुकदमा चलाने के विकल्प का प्रयोग किया था इसलिए जो भी हो इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता कि मियाद अवधि तथा मंजूरी का आदेश प्राप्त करने की आवश्यक, पूर्व शर्त की पालना की जानी चाहिए [पैरा 14] [982-एफ-जी]

4.1. एक विधि द्वारा शासित न्यायालय एक अपराध का जो मियाद द्वारा वर्जित है, उसका संज्ञान नहीं ले सकता है। इसलिए शिकायत याचिका दायर करने में देरी को माफ किया जाना चाहिए। अगर देरी को माफ नहीं किया जाता है तो न्यायालय के पास संज्ञान लेने का कोई क्षेत्राधिकार नहीं होगा। समान रूप से अन्यथा यह तय नहीं किया जाता है कि मंजूरी प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी, अदालत का क्षेत्राधिकार बाधित होगा। [पैरा 14] [982-जी-एच; 983-ए]

4.2. धारा 197 दं.प्र.सं. में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के समान प्रावधान नहीं है जिसमें लोक सेवक के पदच्युत होने के बाद मंजूरी का आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है- अपीलार्थी द्वारा उठाया मुद्दा क्षेत्राधिकार का है-अतः इस पर भी उच्च न्यायालय को ध्यान देना चाहिए था। [पैरा 15,17] [983-बी; 984-बी]

एस. के. जुत्शी व अन्य बनाम बिमल देवनाथ व अन्य (2004) 8, एससीसी 31; उडीसा राज्य जरिए कुमार राघवेन्द्र सिंह व अन्य बनाम गणेश चंद्र जैव, (2004) 8 एससीसी 40; रघुनाथ, अनंत गोविलकर बनाम महाराष्ट्र राज्य व अन्य 2008 (2) स्केल 303-पर निर्भर।

आपराधिक अपीलीय क्षेत्राधिकारः आपराधिक अपील संख्याः480/2008

गुवाहाटी उच्च न्यायालय की ईटानगर पीठ द्वारा आपराधिक निगरानी संख्या 1 (एपी) 2006 के अंतिम निर्णय व आदेश दिनाँक 21.03.2006 से

नागेंद्र राय, डी. भरत कुमार, आनंद, एम. इंद्राणी और अभिजीत सेनगुप्ता अपीलार्थी की ओर से

आर. जी. पाडिया, सावित्री पांडे और डी. धारा माहरा प्रत्यर्थी की ओर से।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा पारित किया गया

एस बी. सिन्हा, जे.

अनुमति दी गई

01. वर्तमान अपीलार्थी गुवाहाटी उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश के निर्णय व आदेश दिनाँक 21 मार्च 2006 से व्यथित एवं असंतुष्ट है।

02. निर्विवादित रूप से, अपीलार्थी उस पूरे तात्विक समय पर सशस्त्र बलों के सदस्य के रूप में 48 बी.आर.टी.एफ.(जी.आर.ई.एफ.) का कमांडेंट था, जब वह उक्त हैसीयत में काम कर रहे था, तो उसके खिलाफ भारतीय दण्ड संहिता 1860 की धारा 166 एवं धारा 167 के तहत अपराध कारित करने के आरोप लगाए गए थे।

03. जिस अवधि के दौरान उक्त अपराध किए जाने की बात कही गई है वह दिनाँक 05.01.19989 से 11.02.1992 की है। नवम्बर 2000 में एक शिकायत दायर की गई थी, जो कथित तौर पर 20.12.1996 को तेजू में 48 बी.आर.टी.एफ. (जी.आर.ई.एफ.) के तत्कालीन कमांडर की दिनाँक 20.12.1996 की रिपोर्ट के आधार पर थी।

न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी, तेजू ने दिनाँक 07.11.2000 के आदेश से अपीलार्थी के विरूद्ध उक्त अपराध का संज्ञान लिया।

04. अपीलार्थी के द्वारा दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 482 के तहत उक्त कार्यवाही को रद्द करने के लिए पेश किए गए आवेदन को गुवाहाटी उच्च न्यायालय द्वारा आक्षेपित निर्णय के कारण खारिज कर दिया।

05. अपीलार्थी की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ वकील श्री नागेन्द्र राय ने निवेदन किया कि संज्ञान लेने का आदेश कानूनी रूप् से गलत है क्योंकि यह मियाद की विहित सीमा के बाद दायर किया गया था तथा किसी भी हालत में धारा 197 दण्ड प्रक्रिया संहिता में वर्णित सक्षम प्राधिकारी के वैध मंजूरी आदेश से समर्थित नहीं था।

06. भारतीय दण्ड संहिता की धारा 166 व 167 में लोक सेवक द्वारा किए गए अपराध के बारे में प्रावधान है। जबकि धारा 166 में साधारण कारावास को एक वर्ष तक की अवधि के लिए हो सकेगा के दण्ड का प्रावधान है। दण्डादेश, जो धारा 167 के अधीन अधिरोपित किया जा सकता है, वह दोनों में से किसी भांति के कारावास जिसकी अवधि तीन वर्ष तक हो सकेगी या जुर्माना या दोनाेंं है।

07. दण्ड प्रक्रिया संहिता 1973 की धारा 468 मियाद की उस सीमा अवधि को निर्दिष्ट करती है जिसके भीतर किसी अपराध का संज्ञान लिया जा सकता है। धारा 468 की उपधारा (2) का खण्ड (सी) मियाद की सीमा अवधि तीन वर्ष निर्दिष्ट करता है यदि अपराध एक वर्ष से अधिक किन्तू तीन वर्ष से अनधिक अवधि के कारावास से दण्डनीय है।

08. इसमें कोई संदेह या विवाद नहीं है कि न्यायालय के पास विलम्ब को क्षमा करने की शक्ति है, किन्तू इस मामले में देरी को क्षमा करने का विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट द्वारा कोई आदेश पारित नहीं किया गया है।

शिकायतकर्ता की उक्त शिकायत याचिका में देरी को माफ करने के लिए लिया गया आधार निम्नानुसार हैः

> "8. कि विभाग द्वारा अनियमित आपूर्ति आदेशों के विरूद्ध एक कोर्ट ऑफ इन्क्वायरी की गई तथा इसके बाद मामला सेना मुख्यालय के पास विचाराधीन था। केन्द्रीय सतर्कता आयोग ने भी मामले में 20 दिसम्बर 1996 से जांच की थी तथा केन्द्रीय सतर्कता आयोग द्वारा जांच पूरी करने के बाद अभियुक्त के विरूद्ध सेना अधिनियम के तहत 981 कार्यवाही करने की मियाद निकल चुकी थी। इसलिए न्यायालय में शिकायत पेश करने में देरी हुई। चूँकि देरी आशय पूर्वक नहीं थी बल्कि कोर्ट आफ इन्क्वायरी आयोजित किए जाने के कारण नियंत्रण से परे थी। अतः देरी को धारा 473 दं.प्र.सं. के तहत माफ किया जावे।''

09. विद्वान न्यायिक मजिस्ट्रेट ने उक्त कथनों पर अपना दिमाग नहीं लगाया। उसने अपीलार्थी को कारण बताआे नोटिस भी जारी नहीं किया कि वह कारण बतावे कि देरी को माफ क्यों नहीं किया जावे। विलम्ब को क्षमा करने से पहले अपीलार्थी को नहीं सुना गया। महाराष्ट्र राज्य बनाम शरदचंद्र विनायक डोंगरे व अन्य [(1995) 1 एस. सी. सी. 42] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है किः-

"5. हमारे विचार में हाईकोर्ट यह तय करने में पूर्णत सही है कि यदि अभियोजन शुरू करने में कोई देरी है तो बिना प्रत्यर्थी को नोटिस दिए उसकी पीठ पीछे तथा देरी को क्षमा करने के लिए कोई कारण दर्ज किए बिना क्षमा नहीं करना चाहिए तथापि इस निष्कर्ष पर पहुँचने के बाद उच्च न्यायालय के लिए यह उचित होता कि मामले के गुण दोष पर जाए बिना मामले को विचारण न्यायालय को इस निर्देश के साथ प्रतिप्रेषित करते कि दोनों पक्षों को सुनने के बाद, नये सिरे से देरी को क्षमा करने के आवेदन को निर्णित करे। तथापि उच्च न्यायालय ने यह रास्ता नहीं अपनाया एवं आगे बढते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन द्वारा अपूर्ण आरोपपत्र के आधार पर पूरक आरोपपत्र पेश करने के लिए अनुमति मांगने वाली याचिका को ध्यान में रखते हुए विचारण न्यायालय को संज्ञान नहीं लेना चाहिए था तथा इस आधार पर भी मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट का आदेश दिनाँक 21.11.1986 अपास्त कर दिया। उच्च न्यायालय का यह मत मामले के तथ्यों एवं परिस्थितियों को देखते हुए स्पष्ट रूप से गलत था।''

10. उपरोक्त विधि दृष्टांत के आलोक में इसमें किसी भी प्रकार का संदेह नहीं है कि देरी को क्षमा करने से पूर्व अपीलार्थी सुनवाई का अवसर प्राप्त करने का हकदार था।

11. हालांकि मंजूरी प्रदान नहीं करने का प्रश्न कही अधिक महत्वपूर्ण है। अपीलार्थी स्वीकृत रूप से एक लोक सेवक है तथा कथित तौर पर उसने लोक सेवक के रूप में अपने पद का दुरूपयोग किया है,

यदि अपराध कारित करने में एक लोक सेवक ने अपने पदीय कर्तव्यों के निर्वहन में कार्य किया है या ऐसे कार्य करना तात्पर्यित है, तो धारा 197 दण्ड प्रक्रिया संहिता सक्षम प्राधिकारी से मंजूरी का आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता स्थापित करती है। चूँकि भारतीय दण्ड संहिता की धारा 166 व धारा 167 के अधीन अपराध का लोक सेवक के पद का आपराधिक दुराचार कारित करने के साथ सीधा सम्बंध है, अपीलार्थी पर समन जारी करने के लिए न्यायिक मजतिस्ट्रेट के सामने मंजूरी का आदेश होना एक पूर्ववर्ती शर्त थी।

12. यद्यपि प्रत्यर्थीगण ने अपने जवाबी हलफनामे में कहा है कि चूँकि अपीलार्थी धारा 125 व धारा 126 सेना अधिनियम के प्रावधानों के अधीन है इसलिए इस तरह की कोई मंजूरी लेने की आवश्यकता नही थी। हमारी विचारणीय राय में उक्त प्रावधान लागू नहीं होते हैं।

13. इस अधिनियम की धारा 125 सक्षम प्राधिकारी को यह विकल्प प्रदान करती है कि या ताे अभियुक्त का विचारण आपराधिक न्यायालय में या अन्य न्यायालय में किया जावे या फिर कोर्ट मार्शल की कार्यवाही की जावे। धारा 126 में आपराधिक न्यायालय द्वारा अपराधी को सुपुर्द करने की अपेक्षा करने की शक्ति के बारे में प्रावधान है।

14. प्रत्यर्थीगण द्वारा, अपीलार्थी को साधारण आपराधिक न्यायालय में विचारित करने के विकल्प प्रयोग किया-ऐसी स्थिति में किसी भी प्रकार का कोई भी संदेह नहीं था कि मियाद की समय सीमा व मंजूरी का आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता की पूर्ववर्ती शर्त की अनुपालना की जानी चाहिए।

परिसीमा काल की समाप्ति के बाद कोई भी न्यायालय अपराध का संज्ञान नहीं कर सकता है। परिवाद पेश करने में हुई देरी को क्षमा किया जाना चाहिए यदि ऐसी देरी को क्षमा नहीं किया जाता है तो न्यायालय को संज्ञान लेने का क्षेत्राधिकार नहीं है समान रूप से जब तक यह तय नहीं किया जाता है कि मंजूरी प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं थी, न्यायालय का क्षेत्राधिकार बाधित होगा।

15. धारा 197 दं.प्र.सं. में भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के समान प्रावधान नहीं है जिसमें लोक सेवक के पदच्युत होने के बाद मंजूरी का आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। इस न्यायालय ने बडी संख्या मे मामलों में मंजूरी का वैध आदेश प्राप्त करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला है एस. के. जुत्शी और एक अन्य बनाम विमल देवनाथ व अन्य [(2004) 8 एस. सी. सी. 31) के मामले में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया है किः-

> "11. ऐसी स्थिति में सही विधिक स्थिति यह है कि कोई अभियुक्त मंजूरी नहीं होने के आधार पर मुक्ति की मांग नहीं कर सकता है चाहे उसका विचारण नए कानून के तहत हो या पुराने कानून के तहत, यदि उस अपराध का संज्ञान न्यायालय द्वारा लेने की दिनाँक को वह लोक सेवक नहीं रहा है लेकिन जहाँ धारा 197 दं.प्र.सं. लागू होती है वहाँ स्थिति भिन्न है।" (जोर दिया गया)

उडीसा राज्य जरिए कुमार राघवेंद्र सिंह व अन्य बनाम गणेश चंद्र यहूदी [(2004) 8 एससीसी 40] भी देखें

हाल ही में रघुनाथ अनंत गोविलकर बनाम स्टेट ऑफ महाराष्ट्र और अन्य [2008 (2) स्केल 303] में विधि आयोग की 41वीं रिपोर्ट को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय ने कहा है किः-

> "24. यह इस अवलोकन के अनुसरण में था कि अभिव्यक्ति "था" को अभिव्यक्ति "है" के बाद सेनानिवृत लोक सेवकों जो अभियोजित किए जाने थे उनके मामले में मंजूरी की आवश्यकता होना लागू करने के लिए जोडा गया।''

आगे यह भी निर्धारित कियाः-

> "26. उच्च न्यायालय ने यह मानने में गलती की है कि मंजूरी की आवश्यकता नही थी क्योंकि अभिव्यक्ति ''था'' प्रयोग में लाई गई।"

16. इसलिए, उच्च न्यायालय ने हमारी राय में आक्षेपित आदेश पारित करने में प्रकट त्रुटि की है।

17. अपीलार्थी द्वारा उठाए गए मुद्दे क्षेत्राधिकार से सम्बंधित थे। अतः उच्च न्यायालय द्वारा उन पर ध्यान देना चाहिए था।

उपर दिए गए कारणों के आधार पर आक्षेपित आदेश टिके रहने योग्य नहीं है। तद्नुसार अपास्त किया जाता है, अपील स्वीकार की जाती है - कोई लागत नहीं।

डी.जी.

अपील मंजूर।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक प्रह्लाद राय शर्मा (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।